द बिग पिक्चर: लैंगिक समानता बनाम धार्मिक रिवाज़

संदर्भ एवं पृष्ठभूमि

केरल में सबरीमाला मंदिर की सदियों पुरानी प्रथा (जिसके अनुसार 10 से 50 वर्ष की आयु वर्ग की महिलाओं के मंदिर में प्रवेश पर प्रतिबंध था) के खिलाफ सर्वोच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश दीपक मिश्रा की अध्यक्षता में संवैधानिक खंडपीठ ने पाया है कि प्रार्थना का अधिकार एक संवैधानिक अधिकार है और यह कानूनों पर निर्भर नहीं है।

- न्यायालय के अनुसार, सार्वजनिक स्थान पर एक निजी मंदिर जैसी कोई अवधारणा नहीं होती है। इसलिये लिंग एवं शरीर विज्ञान (physiology) के आधार पर किसी के साथ कोई भेदभाव नहीं किया जा सकता है।
- यह निर्णय देश में नारीवादी आंदोलन के लिये मील का पत्थर साबित होगा।

मंदिर में महिलाओं के प्रवेश के पक्ष में तर्क

1. अनुच्छेद-14 कानून के समक्ष समानता की गारंटी देता है। ऐसे में इस प्रकार की कोई भी प्राचीन परंपरा संवैधानिक जनादेश के खिलाफ है।
2. इसी प्रकार अनुच्छेद-15 धर्म, मूलवंश, जाति, लिंग, जन्म स्थान, या इनमें से किसी के भी आधार पर भेदभाव पर रोक लगाता है। मंदिर में महिलाओं के प्रवेश पर प्रतिबंध अनुच्छेद-15 का हनन करता है। साथ ही, यह अनुच्छेद-25 (1) में प्रदत्त धार्मिक स्वतंत्रता के अधिकार को भी सीमित करता है।
3. मंदिर में महिलाओं के प्रवेश का निषेध पूरी तरह से महिलाओं की जैविक संरचना और नारीत्व के आधार पर लिया गया निर्णय है। यह एक ऐसा निर्णय है जो समाज में महिला को उसके नारीत्व के कारण अपमानजनक स्थिति प्रदान करता है, यह अनुच्छेद-51 A (e) के लक्ष्य का भी त्याग करता है।
4. संविधान के अनुच्छेद-26 (b) के तहत धार्मिक अधिकारियों के प्रबंधकीय अधिकार, मंदिर में महिलाओं के प्रवेश पर रोक लगाकर अनुच्छेद-25 (1) के तहत प्रदत्त व्यक्तिगत धार्मिक स्वतंत्रता के अधिकार का उल्लंघन नहीं कर सकते हैं। इसलिये धार्मिक अधिकारियों की स्वायत्तता का तर्क समाप्त हो जाता है।
5. अनुच्छेद-25 (2)(b) राज्य को सामाजिक कल्याण और सुधार के लिये या हिंदुओं की सार्वजनिक धार्मिक संस्थाओं को हिंदुओं के सभी वर्गों और अनुभागों के लिये खोलने का उपबंध प्रदान करने हेतु सक्षम बनाता है। ऐसे मामले में राज्य द्वारा संवैधानिक नियमों के प्रवर्तन के लिये एक उचित कानून बनाया जाना चाहिये।
6. निश्चित आयु वर्ग की महिलाओं के मंदिर में प्रवेश पर प्रतिबंध अनुच्छेद-17, जो कि अस्पृश्यता से संबंधित है, सहित कई मौलिक अधिकारों का उल्लंघन है।
7. लैंगिक असमानता के तर्क के अलावा, व्यक्तिगत स्वतंत्रता का विचार भी यहाँ दाँव पर है। धार्मिक संस्थानों के प्रबंधन के नाम पर कुछ लोगों द्वारा धार्मिक अधिकारों का एकाधिकार, व्यक्तिगत स्वतंत्रता के विचार को दूषित करता है।
8. सामाजिक दृष्टिकोण से किसी भी क्षेत्र में इस तरह की प्रतिकूल प्रथाएँ अनिवार्य रूप से मानव क्षमता के प्राकृतिक विकास को सीमित कर देंगी।

मंदिर में महिलाओं के प्रवेश के विरोध में तर्क

1. धर्म और सामाजिक प्रथाएँ एक-दूसरे से अंतर्संबंधित हैं। इसलिये महिलाओं के प्रवेश पर रोक को लिंग असमानता के मुद्दे के रूप में नहीं, बल्कि एक ऐसे धार्मिक अभ्यास के रूप में देखा जाना चाहिये जिसका पालन लोगों द्वारा सदियों से किया जा रहा है। इस तरह के धार्मिक अनुष्ठानों के साथ छेड़छाड़ नहीं किया जाना चाहिये।
2. कुछ धार्मिक प्रथाओं और मिथकों को एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक हस्तांतरित किया जाता है ताकि एक विशेष देवता या भगवान को उनके मूल अवतार में याद किया जा सके। इसलिये, इस तरह के विश्वास या प्रथा की प्रामाणिकता को बनाए रखने के लिये प्रयास किया जाना चाहिये।
3. कुछ प्रथाएँ और विश्वास ऐसे हैं जिन्हें बेहतर फैसले के लिये धार्मिक निकायों के लिये छोड़ा जाना चाहिये और उन्हें पूर्ण स्वतंत्रता दी जानी चाहिये कि वे इन्हें किस रूप में देखना चाहते हैं।
4. संविधान के अनुच्छेद 26 में कहा गया है कि प्रत्येक संप्रदाय को अपने धार्मिक मामलों के प्रबंधन का मौलिक अधिकार है। नतीजतन, धार्मिक निकाय अपने अधिकारों के तहत ऐसे निर्देशों को पारित कर सकते हैं।
5. यह एक क्षेत्र विशेष का धार्मिक मुद्दा है और इसे ज़्यादा तूल नहीं दिया जाना चाहिये।
6. सबरीमाला मंदिर को एक ऐसे संस्थान के रूप में देखा जाना चाहिये जहाँ केवल पुरुषों को प्रवेश की अनुमति दी जाती है। जिस प्रकार से बालक और बालिकाओं के अलग-अलग विद्यालय हैं।
7. एक अन्य महत्त्वपूर्ण बात यह है कि सबरीमाला मंदिर के अंदर कोई "ईश्वर" नहीं है, अपितु मंदिर के अंदर एक "देवता" हैं। देवता एक सामाजिक-

सांस्कृतिक ऊर्जा केंद्र के रूप में माना जाता है जबकि दूसरी तरफ "ईश्वर" सार्वभौमिक होता है। अतः देवता एक कानूनी इकाई है और इसलिये इसके अधिकार संविधान के विशेषाधिकारों द्वारा संरक्षित हैं।

- सबरीमाला मंदिर के अंदर महिलाओं के प्रवेश के संबंध में धार्मिक अधिकारियों की तरफ से दावा किया गया है कि सबरीमाला मंदिर में प्रवेश करने की इच्छा रखने वाली किसी भी महिला ने अदालत से संपर्क नहीं किया है। यह भी कहा जाता है कि यदि अदालत महिलाओं के प्रवेश के पक्ष में नियम बनाती है, तो भी भारतीय महिला धार्मिक रीति-रिवाजों का सम्मान करना जारी रखेगी और स्वयं ही सबरीमाला में प्रवेश नहीं करेगी। यह तर्क गलत है। ऐतिहासिक रूप से कानूनी सुधार आमतौर पर सामाजिक-राजनीतिक परिवर्तन से पहले होते हैं। सती या अस्पृश्यता जैसी कई पुरातन प्रथाओं के कानूनी तौर पर उन्मूलन में रातोंरात सामाजिक परिवर्तन नहीं हुआ। कानून अक्सर एक संबंधित सामाजिक-सांस्कृतिक विकास को बल प्रदान करता है।
- मासिक धर्म के आधार पर महिलाओं के साथ भेदभाव करना न केवल अवैज्ञानिक है बल्कि विशेष रूप से अपमानजनक भी है। इस प्राकृतिक प्रक्रिया से जुड़ा सामाजिक कलंक धार्मिक प्राधिकरण द्वारा आध्यात्मिक प्रतिबंधों के बहाने अंतःस्थापित और समेकित है। 21वीं शताब्दी ऐसी प्रतिगामी प्रवृत्ति की अनुमति नहीं देती है।
- बहुत बड़े स्तर पर विभिन्न सामाजिक-राजनीतिक समूहों द्वारा धार्मिक भेदभाव का अभ्यास किया जाता है। कई मंदिरों में दलितों को प्रवेश करने की अनुमति नहीं है। प्रसिद्ध जगन्नाथ मंदिर में विदेशियों और किसी अन्य धर्म से जुड़े लोगों को प्रवेश की अनुमति नहीं है। इस तरह के भेदभाव व्यापक स्तर पर हैं और बिना कानून के डर के खुलेतौर पर प्रचलन में हैं। सबरीमाला मंदिर मामले में एक अनुकूल निर्णय इसी तरह के अन्य मुद्दों के न्यायिक विवेचन के लिये एक उदाहरण स्थापित करेगा।

(टीम दृष्टि इनपुट)

आगे की राह

- सबसे पहले और सबसे महत्त्वपूर्ण बात यह है कि मंदिर में प्रवेश का मुद्दा पुराने मिथकों और मान्यताओं की सहभागिता और ऐसी प्रथाओं के उन्मूलन, जो कि विकासशील समय के साथ सामंजस्यपूर्ण तालमेल नहीं कर पाती हैं, के बीच एक बहस है। चूँकि सर्वोच्च न्यायालय इस मुद्दे में अंतिम मध्यस्थ है, इसलिये उसे इस मुद्दे को सौहार्द्रपूर्ण ढंग से संभालना होगा।
- लिंग और शरीर विज्ञान के आधार पर महिलाओं के साथ भेदभाव घृणास्पद है और समतावादी समाज में इसका कोई स्थान नहीं है।

PDF Refernece URL: https://www.drishtiias.com/hindi/printpdf/sexual-equality-vs-religious-rituals